चांद से जुड़ी कहानियों का सफर

विकी गोल्डबर्ग

© The New York Times 2019

न्यूयॉर्क के मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट में चल रही एक प्रदर्शनी चांद से संबंधित हमारे अब तक के तमाम अभियानों के बारे में बताती है। इसमें गैलीलियो से लेकर बाद के खगोलवैज्ञानिकों तथा कलाकारों द्वारा बनाए गए चांद के रेखाचित्रों और कैमरों से खींचे गए चित्रों के साथ इससे जुड़ी अनेक वस्तुएं भी हैं।

शताब्दियों से चांद अपने रहस्य के बारे में बताने से दृढ़ता से इनकार करता आया है। प्राचीन यूनानी और रोमन सभ्यता में चांद को सफेद और चिकना माना जाता था, लेकिन उसकी सतह पर व्याप्त गंदे धब्बों की उनके पास कोई सुविचारित व्याख्या नहीं थी। 90 ईस्वी में प्लूटार्क ने लिखा कि वे धब्बे दरअसल पहाड़ों और घाटियों की छायाएं हैं और चांद अवश्य ही मनुष्य के बसने के अनुकूल होगा।

चांद के बारे में इन जानकारियों से सभी लोग सहमत नहीं थे, लेकिन कभी-कभी अज्ञानता भी वरदान बन जाती है। अपने सवालों के तसल्लीबख्श जवाब न पाकर मानव जाति चांद के बारे में कुछ सिद्धांत, अनुमान, मिथक और कपोल कल्पनाएं ले आईं। टेलीस्कोप के जरिये चांद को् और स्पष्टता से देख पाना संभव हो गया, और भले ही किसी प्राणी के वहां होने के बारे में पता नहीं चला, लेकिन यह धारणा बन गई कि वहां रहने वाला नहीं मरेगा। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जो अफवाहें फैलीं, उनमें से एक यह भी थी कि जर्मनों ने चांद पर अपने हित में कुछ गोपनीय सुविधाएं शुरू की हैं, जबकि कुछ ने तो यहां तक अफवाह फैली दी कि हिटलर ने अपनी मृत्यु के बारे में झूठी खबर फैला दी है, जबकि वह चांद की सतह पर गोपनीय ढंग से रह रहे हैं।

न्यूयॉर्क स्थित मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट में 'अपोलो' स म्यूज : द मून इन द एज ऑफ फोटोग्राफी' नाम से एक प्रदर्शनी शुरू हुई है, जो पिछली चार शताब्दियों के चांद के इतिहास के बारे में बताती है। इस प्रदर्शनी में चांद से जुड़ी उत्तरोत्तर खगोलविज्ञानीय खोजें, जो सामान्य आकार से काफी बड़े तीन सौ चित्रों, इससे संबंधित कुछ वस्तुएं (एक टेलीस्कोप, एक पुरानी तस्वीर, दो मून ग्लोब और खगोलवैज्ञानिकों द्वारा इस्तेमाल किए गए हासेलब्लैड कैमरे) और कुछ फिल्मों के चुनींदा अंश विज्ञान और कला के सम्मोहित करने वाले समागम जैसे मालूम होते हैं। ये चित्र खगोलवैज्ञानिकों की ज्ञान की अनथक खोज के साथ-साथ तकनीकी प्रगति तथा चांद के बारे में कलाकारों की धारणाओं तथा कल्पनाओं के बारे में बताते हैं। यह प्रदर्शनी जानने और खोज करने की मानवीय इच्छा के बारे में तो बताती ही है, यह टेलीस्कोप की खोज के समय से लेकर पचास साल पहले

चांद पर पड़े मनुष्य के पहले चरण तक चांद के चित्र खींचने की लगातार बढ़ती प्रवृत्ति के बारे में भी बताती है।

मेट के डिपार्टमेंट ऑफ फोटोग्राफी के क्यूरेटर मिया फिनेमैन ने बाल्टीमोर काउंटी स्थित मैरीलैंड यूनिवर्सिटी के एलबिन ओ कन लाइब्रेरी ऐंड गैलरी के क्यूरेटर और स्पेशल कलेक्शन्स हेड बेथ सौंडर्स के साथ मिलकर इस प्रदर्शनी का आयोजन किया। यही नहीं, इन दोनों ने इस प्रदर्शनी के इनफॉरमेटिव कैटलॉग के लिए लेख भी लिखे।

वर्ष 1608 में टेलीस्कोप के आविष्कार के बाद लगने लगा था कि चांद के रहस्यों के बारे में पता चल जाएगा। वर्ष 1609 में गैलीलियो ने चांद के पोर्ट्रेट बनाए, जो उसके बारे में सबसे आधिकारिक ढंग से बताते थे। अंग्रेज गणितज्ञ और खगोलविज्ञानी थॉमस हैरिओट ने टेलीस्कोप से चांद के चित्र खींचकर उसके बारे में अपने विचार गैलीलियो से पहले बता दिए थे, लेकिन उनके ये विचार बहुत बाद में प्रकाशित हुए और उसमें चांद पर के 'विचित्र धब्बों' के बारे में कुछ नहीं कहा गया था। गैलीलियो को महसूस हुआ कि ये धब्बे वस्तुतः पहाड़ों की छाया हैं। इस प्रदर्शनी में गैलीलियो के दो प्रकाशित चित्र शामिल किए गए हैं।

17 वीं शताब्दी में टेलीस्कोप के विकास के साथ मनुष्य ज्यादा दूर की और छोटी चीजें देखने में सक्षम हुआ। जोनेस हेवेलियस ने 1647 में सेलेनोग्राफी नाम से एक मून एटलस प्रकाशित किया-यूनानी मिथक कथाओं में सेलेना चांद की देवी का नाम है। इसे चांद पर केंद्रित पहली किताब कहा जाता है। खगोलवैज्ञानिकों ने चांद को जैसा देखा, वैसा उसका चित्र बनाया। कलाकारों ने उन चित्रों को और बेहतर किया। फ्रेंच कलाकार क्लोदे मैलन ने 1635 में चांद के जो रेखाचित्र बनाए, वे केवल सुंदर ही नहीं थे, वे इतने सटीक और सुघड़ थे कि अगली दो शताब्दियों तक कोई कलाकार उससे बेहतर रेखाचित्र नहीं बना पाया।

20 वीं सदी के मध्य तक चांद प्यार करने की चीज हो गया था। पोर्ट्रेट स्टूडियोज ने मुस्कराती अर्द्धचंद्राकार आकृतियों को मशहूर कर दिया था। जब नासा ने अपना चंद्र अभियान शुरू किया, तब तक चांद गंभीर बहस का विषय बन गया था। नासा के मानवरहित चंद्र अभियान ने चांद की नजदीक से तस्वीरें लीं और लैंडिंग साइट का भी पता लगाया। लेकिन नील आर्मस्ट्रांग ने उन्हें दिए गए निर्देश के विपरीत अलग लैंडिंग साइट चुनी। शुरुआत में आलोचकों ने अपोलो अभियान को झूठ कहा। लेकिन अमेरिकियों ने दुखांत, उथल-पुथल और शीतयुद्ध के एक दशक के बाद इसे राष्ट्र को गौरवान्वित करने वाले अवसर के रूप में देखा।

1969 में चांद पर अमेरिकी ध्वज फहराया गया, तो इसलिए नहीं कि चांद पर अमेरिकी उपग्रह स्थापित कर हमने उसे अमेरिकी कॉलोनी बना लिया, बल्कि इसलिए कि हम चांद से जुड़ी अपनी उपलब्धि को यादगार बनाना चाहते थे।

श्यौराज सिंह बेचैन

प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय

संतराम बी.ए. को याद करने का अर्थ

पिछले दिनों दिल्ली के गांधी शांति प्रतिष्ठान में संतराम बी.ए. की 32वीं पुण्यतिथि पर उनके साहित्य और चिंतन पर चर्चा की गई। उनके बारे में लोगों की जानकारी सीमित है। 14 फरवरी, 1887 को पैदा हुए संतराम बी.ए. की मृत्यु 31मई, 1988 को दिल्ली में पुत्री गार्गी चड्डा के घर पर हुई। वह अपने समय के बड़े पत्रकार और संपादक थे। इन्होंने *युगान्तर, उषा, आर्य मुसाफिर, भारती* आदि पत्रिकाओं का संपादन कर उस दौर में समाज सरोकार की पत्रकारिता को धार देकर वर्णवादियों से लोहा लिया था। उन्होंने 'जात-पात तोड़क' अंक निकाला, जो उस समय बड़े साहस का काम था। जात-पात तोड़क शीर्षक से उन्होंने हिंदी मासिक भी निकाला। 1928 में इसी पत्रिका का नाम बदल कर उन्होंने *क्रांति* कर दिया था। संतराम उर्दू, फारसी और पंजाबी भाषाओं के ज्ञाता थे। हिंदी में उन्होंने विलंब से प्रवेश किया, पर वर्षों के अभ्यास से भाषा पर असाधारण अधिकार भी हासिल किया। उनकी *युगान्तर* पत्रिका में हिंदी के वे सभी लेखक शामिल थे, जो *सरस्वती* पत्रिका में छपा करते थे। उन्होंने *अलबेरूनी का भारत* चार खंडों में हिंदी में अनुवाद किया था, जो इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ था।

संतराम बी.ए. ने अपने 'जात-पाति तोड़क मंडल' के लिए भीमराव आंबेडकर से जो लेख लिखवाया था, वही लेख बाद में *एनिहिलेशन ऑफ कास्ट* के रूप में छपकर प्रसिद्ध हुआ।

हिंदू समाज को संगठित बनाने के लिए वह जातिभेद समाप्त करना चाहते थे। लाहौर में उन्होंने 'जात-पात तोड़क मंडल' की स्थापना की थी। उन्होंने न केवल अपनी पत्रिका में संपादकीय अग्रलेख लिखे, बल्कि तत्कालीन हिंदी, पंजाबी पत्र-पत्रिकाओं में भी लिखा। उस दौर में नवजागरण कालीन ऐसी कोई पत्रिका नहीं थी, जिसमें उनके लेख न छपे हों। प्रेमचंद के संपादन में भी संतराम के लेख छपे। नवजागरण काल के संपादकों के अपने सामाजिक सरोकार थे। वे निचली जातियों के धर्म परिवर्तन से काफी चिंतित थे। संतराम बी.ए. जाति और वर्ण के घोर विरोधी थे और हिंदू धर्म की संकीर्णताओं पर प्रहार कर रहे थे, लेकिन वह निचली जातियों के धर्म परिवर्तन के खिलाफ थे।

एक दलित स्त्री धर्म परिवर्तन कर मुसलमान बनी, तो संतराम ने *युगान्तर* पत्रिका में संपादकीय लिखा, जिसका सार यह था कि यदि हिंदू नहीं चेतेंगे, तो निचली जातियां और स्त्रियां इसी तरह मुसलमान बनती रहेंगी। सनातनी हिंदुओं से संतराम की असहमतियां थीं। वह कहते थे संपादकों को सुधारक भी होना चाहिए। 'जात-पात तोड़क मंडल' की भूमिका को लेकर *माधुरी* पत्रिका में बहस चली। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने लिखा कि जात-पांत तो समाप्त होनी चाहिए, पर रोटी, बेटी का संबंध तो व्यक्तिगत है। निराला रोटी भेद के भी विरोध में थे। 'निराला' कहते थे कि यह संस्था 'जात-पात तोड़क' नहीं 'जात-पात योजक' होनी चाहिए।

वर्ष 1936 में संतराम ने 'जात-पात तोड़क मंडल' की सभा की अध्यक्षता के लिए डॉ. आंबेडकर को आमंत्रित किया था और आंबेडकर ने जाति विषयक शोधपूर्ण निबंध लिखकर मंडल के सदस्यों को भेजा था। जब उनका वह निबंध पढ़ा गया, तो मंडल के कुछ सदस्यों ने उसका विरोध किया। वे चाहते थे कि आंबेडकर हिंदू ग्रंथों को नकारने की अपनी राय वापस ले लें। पर आंबेडकर ने अपने लेख में संशोधन करने से मना कर दिया। संतराम ने यह कहते हुए सम्मेलन ही स्थगित कर दिया कि आंबेडकर का कोई विकल्प नहीं है। लेकिन उस निबंध को प्रकाशित कर उसे वितरित किया गया। वही निबंध *एनिहिलेशन ऑफ कास्ट* नामक किताब के रूप में प्रकाशित हुआ। अतः आंबेडकर से *जाति का विनाश* किताब लिखवाने का श्रेय संतराम को ही जाता है।

अपने समय में संतराम जिन सवालों से रूबरू हुए, वे प्रश्न आज भी मुंह बाये खड़े हैं। आज भी आदिवासी डॉक्टर पायल तड़वी जातिसूचक टिप्पणियों से तंग आकर आत्महत्या कर रही है। महिला डॉक्टरों की भाषा उसे मृत्यु का चुनाव करने के लिए मजबूर कर रही है। उन डॉक्टरों ने पायल तड़वी को कहा था कि यदि बर्दाश्त नहीं था तो मरी क्यों, संस्था छोड़कर क्यों नहीं गई? समाज का यह रवैया बदलना चाहिए। द्वेष, घृणा, अपमान का बाजार बंद होना चाहिए। 'जात-पात तोड़क मंडल' अंतर्जातीय विवाह को बढ़ावा देकर जातिविहीन समाज का निर्माण कर रहा था। परंतु कालांतर में जातियां तोड़ने के बजाय जोड़ने की राजनीति प्रभाव में आई।

क्यों नाखुश होंगे 13 अर्थशास्त्री ?

नकद हस्तांतरण को प्रोत्साहित करने के लिए केंद्र सरकार ने डिजिटल भुगतान को बढ़ावा दिया है और बड़ी नकदी निकासी को हतोत्साहित किया है। बजट में यही ऐसा सुधार है, जिस पर मैं टिक लगाऊंगा, लेकिन यह 'सुधार' भी सात वर्ष पुराना है।

पी चिदंबरम

पूर्व केंद्रीय मंत्री

पांच साल पहले जब डॉ अरविंद सुब्रमण्यम ने अपनी पहली आर्थिक समीक्षा (2014-15) पेश की थी, तब उन्होंने कहा था, 'भारत बेहद प्रभावी स्थिति में पहुंच चुका है, राष्ट्रों के इतिहास में यह दुर्लभ क्षण होता है, जिसमें वह दो अंकों की मध्यम अवधि की विकास रणनीति को आगे बढ़ा सकता है।' मोदी 1.0 सरकार के दौरान वह यह देखने के लिए अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सके कि सरकार अपने वादों पर अमल करने में नाकाम रही। उनके उत्तराधिकारी डॉ. कृष्णमूर्ति सुब्रमण्यम को यह जिम्मेदारी मिली कि वह यह स्वीकार कर सकें कि मोदी 1.0 सरकार पांच वर्ष की अवधि के दौरान जीडीपी की औसत वृद्धि दर केवल 7.5 फीसदी ही कायम रख सकी। 7.5 फीसदी की विकास दर संतोषजनक है, लेकिन यह दो अंकों की विकास दर के कहीं आसपास भी नहीं है। इसके अलावा पिछले पांच वर्ष के दौरान विकास दर क्रमशः 7.4, 8.0, 8.2 और 6.8 फीसदी रही है। डॉ सुब्रमण्यम शुरू के तीन वर्षों के दौरान विकास दर के 7.4 फीसदी से 8.2 फीसदी पहुंचने पर खुश हुए होंगे, लेकिन मुझे संदेह है कि नवंबर, 2016 में जब देश पर नोटबंदी की मार पड़ी थी, तब वह परेशान हुए होंगे। उसके बाद से विकास दर 8.2 फीसदी से गिरकर 7.2 और 6.8 फीसदी रह गई।

मोदी 2.0 सरकार ने ऐसे समय कार्यभार संभाला है, जब यह गिरावट और तेज हुई है। वर्ष 2018-19 के दौरान विभिन्न तिमाहियों में विकास दर क्रमशः आठ, सात, 6.6 और 5.8 फीसदी रही। ऐसी खतरनाक परिस्थिति में नए मुख्य आर्थिक सलाहकार (सीईए) ने मोदी 2.0 सरकार के लिए लक्ष्य तय किए हैं : 'भारत का लक्ष्य 2024-25 तक पचास खरब डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने का है, जिससे वह दुनिया की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के लिए मौद्रिक नीति रूपरेखा के रूप में मुद्रास्फीति की दर चार फीसदी निर्धारित की गई है, उसे देखते हुए इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वास्तविक विकास दर आठ फीसदी होने की आवश्यकता है।'

यह एक उचित लक्ष्य है। हमारे समक्ष प्रश्न यह है कि निर्मला सीतारमण का पहला बजट आर्थिक समीक्षा में तय लक्ष्य की ओर कितना आगे बढ़ा? हममें से हर कोई ऐसे बक्सों की सूची बनाकर बजट विवरणों के आधार पर खुद से पूछ सकता है कि वित्त मंत्री ने कितने बक्सों में टिक लगाया।

अक्तूबर, 2018 में अंतरराष्ट्रीय ख्याति के तेरह अर्थशास्त्रियों ने 14 शोध पत्र तैयार किए, जो 2019 में *व्हाट इकोनॉमी नीड्स नाऊ* (अर्थव्यवस्था को अभी किस चीज की जरूरत है) शीर्षक से प्रकाशित हुए। ये सारे अर्थशास्त्री भारतीय या भारतीय मूल के थे। डॉ अभिजीत बनर्जी और डॉ रघुराम राजन ने उनके विचारों को परखने के बाद 'भारत की आठ शीर्ष चुनौतियां' शीर्षक से इस संग्रह का उपसंहार लिखा। इनमें से प्रत्येक का संबंध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अर्थव्यवस्था से है। नीचे बक्सों की मेरी सूची है, जिनमें से पांच विचार मैंने इस किताब से लिए है। यहां बक्से दिए गए हैं, और मैंने बताया है कि क्यों मैंने इन्हें क्रॉस किया है या इसमें राइट का टिक लगाया हैः

✖ **राजकोषीय घाटे पर अंकुश :** राजकोषीय घाटे पर अंकुश लगाने में मोदी सरकार का रिकॉर्ड बहुत खराब है। पहले पांच वर्षों के दौरान यह राजकोषीय घाटे को 4.5 फीसदी से 3.4 फीसदी तक कम करने में सफल रही। वास्तव में चार वर्षों के दौरान राजकोषीय घाटा 3.4 फीसदी से 3.5 फीसदी के बीच था और 2019-2020 के बजट में इसे 3.3 फीसदी तक नीचे लाने का वादा किया गया है। 2018-19 के आंकड़े को लेकर संदेह है, क्योंकि उस वर्ष राजस्व की भारी हानि हुई थी और बजट की भारी उधारी बकाया थी। इसलिए 2019-2020 के राजकोषीय घाटे का अनुमान भी संदेह के दायरे में है।

✖ **तनावग्रस्त क्षेत्र (कृषि, बिजली, बैंकिंग) :** बजट भाषण में कृषि क्षेत्र के तनाव को कम करने के किसी भी तरह के उपाय का जिक्र नहीं है। बिजली के बारे में इसमें मौजूदा योजना उदय को ही दोहराया गया है, जिसका लक्ष्य वितरण कंपनियों के वित्तीय और परिचालन प्रदर्शन में सुधार करना है। इसमें पुराने और नाकारा संयंत्रों को रिटायर करने की बात की गई है और प्राकृतिक गैस में कमी के कारण गैस संयंत्रों की क्षमता के कम उपयोग की ओर ध्यान देने की बात की गई है। बैंकिंग क्षेत्र के बारे में इसमें, सरकारी बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के लिए 70,000 करोड़ रुपये (यह पूरी तरह से नाकाफी है) उपलब्ध कराने और बैंकों को वित्तीय रूप से मजबूत एनबीएफसी की जमा संपत्तियों को खरीदने के लिए छह माह में एक बार आंशिक क्रेडिट गारंटी प्रदान करने का वादा किया गया है। (यह अपर्याप्त तरलता को समझने में पूरी तरह से नाकाम रहा)

✖ **कारोबार का बेहतर माहौल :** कारोबारी माहौल को 'बेहतर' बनाने से संबंधित अनेक विचार मेज पर मौजूद थे। यदि करोबार वही चीजें उसी ढंग से करेगा तो इससे क्या अच्छा होगा और क्या सिर्फ इसे इसी तरह से करते रहने से कारोबार आसान हो जाएगा? विशेष आर्थिक क्षेत्र जरूरी नहीं कि निर्यात को ही लक्षित हों; श्रम कानूनों को बदलें, न कि सिर्फ उन्हें संहिता बनाएं; स्टार्ट अप को शुरू होने और बिना किसी मंजूरी या लाइसेंस वगैरह के तीन साल तक चलने की मंजूरी दें। ये सब ऐसे विचार थे, जिन्हें स्वीकार किया जा सकता था।

✖ **कम बोझ वाला नियंत्रण :** सर्वश्रेष्ठ समाधान है व्यापक विकेंद्रीकरण। इसकी शुरुआत स्कूली शिक्षा को राज्यों को स्थानांतरित करने से हो सकती है, जैसा कि मूल संविधान में प्रावधान था, उसके बाद और अधिक विषयों को समवर्ती सूची से राज्य सूची में स्थानांतरित किया जा सकता है। इसके उलट वित्त मंत्री ने स्कूल और कॉलेज की शिक्षा में केंद्र सरकार की बड़ी भूमिका मान ली! रिजर्व बैंक, सेबी, भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग, सीबीडीटी, सीबीआईसी आदि नियंत्रकों में बदल चुके हैं और विनियम कम होने के बजाय बोझ बन गए हैं।

✔ **और अधिक नकद हस्तांतरण :** इस मामले में केंद्र सरकार ने आगे बढ़कर डिजिटल भुगतान को बढ़ावा दिया है और बड़ी नकदी निकासी को हतोत्साहित किया है। यह स्वाभाविक है कि और अधिक सब्सिडी और नकद लाभ प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण के जरिये हस्तांतरित होंगे। हालांकि यह 'सुधार' सात वर्ष पुराना है, लेकिन मैं इसके बक्से पर टिक लगाऊंगा।

अर्थव्यवस्था को मौलिक सुधारों की जरूरत है, जैसा कि 1991-96 के दौरान किया गया था। सरकार के पास ऐसे सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए जनादेश प्राप्त है। बिना किसी स्पष्टीकरण के सरकार ने वृद्धिशील सुधारों का रास्ता चुना है। वे 13 अर्थशास्त्री, जो कि सारे भारतीय हैं या भारतीय मूल के हैं, इससे मायूस होंगे। वे लोग भी, जो मौलिक सुधारों के हिमायती थे।

Licensed by The Indian Express Limited

पर्यावरण सेवा के बदले ग्रीन बोनस

भारतीय हिमालयी राज्यों के जंगल प्रतिवर्ष 944.33 अरब रुपये के मूल्य के बराबर पर्यावरण की सेवा करते है। इसको ध्यान में रखते हुए हिमालयी राज्यों की सरकारें ग्रीन बोनस की मांग कर रही हैं।

सुरेश भाई

सामाजिक कार्यकर्ता

भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल (32,87263 वर्ग किमी) में से 16.3 फीसदी (5,37,435 वर्ग किमी) में फैले 11 हिमालयी राज्यों में अभी तक 45.2 फीसदी क्षेत्र में जंगल मौजूद हैं। जबकि देश में केवल 22 फीसदी भूभाग में ही जंगल हैं, जो स्वस्थ पर्यावरण मानक 33 फीसदी से भी कम है।

भारतीय हिमालयी राज्यों की ओर गौर किया जाए, तो यहां से निकल रही हजारों जीवनदायिनी नदियों को एक जल टैंक के रूप में देखा जाता है, जिसके कारण देश की लगभग 50 करोड़ की आबादी को पानी मिलता है। मैदानी भू-भाग से भिन्न हिमालयी संस्कृति वनों के बीच पली-बढ़ी है। यहां के वनवासी समाज जंगलों की रक्षा एक विशिष्ट वन प्रबंधन के आधार पर करते आ रहे हैं। अधिकांश गांवों ने अपने जंगल पाले हुए हैं, जिस पर अतिक्रमण और अवैध कटान रोकने के लिए चौकीदार रखे हुए हैं। ये वन चौकीदार अलग-अलग क्षेत्रों में विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं, जिसका भरण-पोषण गांव के लोग करते हैं। कई गांव के जंगलों में तराजू लगे हुए हैं, जिसमे जंगल से आ रही घास, लकड़ी का अधिकतम भार 50-60 किलोग्राम तक लाना ही मान्य है, जिसकी वन चौकीदार नियमित जांच करते हैं।

इस पुश्तैनी वन व्यवस्था को तब झटका लगा, जब अंग्रेजों ने वनों के व्यावसायिक दोहन के लिए 1927 में वन कानून बनाया था। आजादी के बाद भी इसी कानून के अनुसार वन व्यवस्था चली आ रही है, जिसके कारण पर्यावरण की सर्वाधिक सेवा करने वाले वन और वनवासी की हैसियत कम हो गई है। राज्य की व्यवस्था ऐसी है कि वे जब चाहें किसी भी जंगल को विकास की बलिवेदी पर चढ़ा सकते हैं।

यहां सरकारी आंकड़ों के आधार पर ध्यान देना होगा कि हिमाचल प्रदेश में 66.52, उत्तराखंड में 64.79, सिक्किम में 82.31, अरुणाचल प्रदेश 61.55, मणिपुर में 78.01, मेघालय में 42.34, मिजोरम में 79.30, नगालैंड में 55.62, त्रिपुरा में 60.02 और असम में 34.21 फीसदी वन क्षेत्र मौजूद हैं। वनों की इस मात्रा के कारण जलवायु पर भारतीय हिमालय का नियंत्रण है।

सन 2009 में कोपनहेगन में हुए जलवायु सम्मेलन में भाग लेने से पहले हुई जन सुनवाइयों में लोगों ने हिमालय के विशिष्ट भू-भाग और मौजूदा प्राकृतिक संसाधन और इससे आजीविका चलाने वाले समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए 'ग्रीन बोनस' की मांग की। भारत के तत्कालीन पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने भी हिमालयी राज्यों को 'ग्रीन बोनस' दिए जाने को सैद्धांतिक स्वीकृति दी। वैसे चिपको, रक्षासूत्र, मिश्रित वन संरक्षण आंदोलनों से

जुड़े पर्यावरण कार्यकर्ता वर्षों से हिमालय के लोगों के लिए ऑक्सीजन रॉयल्टी की मांग कर रहे हैं। पर्यावरण की सेवा सबसे अधिक जंगल करते हैं। यह सर्वविदित है कि मिट्टी और नमी के उत्पादन में वनों की अहम भूमिका है।

विकसित देशों के सामने कार्बन उत्सर्जन की कीमत का आकलन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से गढ़वाल विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो एसपी सिंह ने एक आंकड़ा प्रस्तुत किया है, जिसमें कहा गया कि भारतीय हिमालयी राज्यों के जंगल प्रतिवर्ष 944.33 अरब रुपये के मूल्य के बराबर पर्यावरण की सेवा करते हैं। कार्बन के प्रभाव को कम करने में वनों का बड़ा महत्व है। इसमें हिमालयी राज्यों के वन जैसे जम्मू-कश्मीर में 118.02, हिमाचल में 42.46, उत्तराखंड में 106.89, सिक्किम में 14.2, अरुणाचल में 232.95, मेघालय में 55.15, मणिपुर में 59.67, मिजोरम में 56.61, नगालैंड में 49.39, त्रिपुरा में 20.40 अरब रुपये मूल्य के बराबर पर्यावरण सेवा देते हैं।

इसको ध्यान में रखते हुए हिमालयी राज्यों की सरकारें ग्रीन बोनस की मांग कर रही हैं। 15 जून 2019 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अध्यक्षता में हुई नीति आयोग की गवर्निंग कांउसिल की बैठक में उत्तराखंड के मुख्यमंत्री त्रिवेन्द्र सिंह रावत ने ग्रीन बोनस की मांग उठाई है। लेकिन नीति आयोग की तरफ से सामने आए रोड मैप में इसे कोई स्थान नहीं मिला है। इसी तरह हिमालय के वनों के योगदान की बार-बार अनदेखी हो रही है। लेकिन ग्रीन बोनस की मांग का औचित्य भी तभी होगा, जब वनवासियों को वन भूमि पर मालिकाना हक मिले। महिलाओं को रसोई गैस में पचास फीसदी की छूट हो। पर्वतीय इलाकों में भूक्षरण रोका जाए। वनों में आग पर नियंत्रण हो और वृक्षारोपण के बाद पेड़ों की रक्षा करने वाले लोगों को आर्थिक मदद मिले। गांव में जहां लोगों ने जंगल पाले हुए हैं, उन्हें सहायता दी जाए। पहाड़ी सीढ़ी नुमा खेतों का सुधार किया जाए। जल संरक्षण व छोटी पन-बिजली के निर्माण पर जोर दिया जाए। महिलाओं को घास, लकड़ी, पानी सिर और पीठ पर ढुलाई करने के बोझ से छुटकारा मिले। इन सब विषयों पर कदम बढ़ाने के लिए राज्यों को भी अपने बजट में ग्रीन बोनस रखना चाहिए। इससे केंद्र सरकार को भी आईना दिखाया जा सकता है। तभी हिमालय की पहरेदारी करने वाले पेड़ों और लोगों की जीविका ग्रीन बोनस से बेहतर हो सकती है।